Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

मोक्ष का स्वरूप एवं जैन–दर्शन में उसकी मूल प्रवृत्तियाँ

डॉ० उमा शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, नानकचन्द ऐंग्लो संस्कृत कॉलेज़, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 4, Issue 3
Page Number : 103-108
Publication Issue :
May-June-2021
Article History
Accepted : 01 June 2021
Published : 15 June 2021

सारांश– दर्शन शब्द प्रेक्षण अर्थ वाली दृश् धातु से ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है जैन दर्शन जैन धर्म के विचार पक्ष का ही एक रूप है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है तथा जीव के समस्त कर्मों का क्षय हो जाना ही मोक्ष है। वस्तुतः कर्म रहित शुद्धावस्था को ही मोक्ष एवं निर्वाण कहा गया है। मोक्ष की प्राप्ति रत्नत्रय के सम्मिलित सहयोग से सम्भव है।

मुख्य शब्द–मोक्ष, जैन, दर्शन, धर्म, निर्वाण, कर्म, आत्मा।

दर्शन शब्द प्रेक्षण अर्थ वाली दृश् धातु से ल्युट् (अन्) के योग से निष्पन्न होता है।[i] भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्भूत हुआ, उसने दूर–दूर के मानवों के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हें पवित्र नित्य शुद्ध–बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान किया है। इसी पतितपावनी धारा को लोग दर्शन के नाम से पुकारते है।[ii] भारतीय दर्शन परम्परा में जैन–दर्शन का विशेष महत्त्व है। यह दर्शन जैन धर्म के विचार पक्ष का ही एक रूप है। जैन धर्म के प्रथम प्रवर्तक भगवान् ऋषभदेव थे जो भारतवर्ष की पुण्यभूमि पर करोड़ों वर्ष पूर्व हुए जैन दर्शन की नींव, अतः उनके द्वारा प्रचलित जैन–धर्म भी बहुत प्राचीन धर्म है। जैन धर्म के मूल ग्रन्थों (जो आगमकर्त्ता है) में ही पड़ चुकी थी। 'नास्तिको वेदनिन्द[iii] मनुस्मृति के इस कथन के आधार पर जैन–बौद्ध–चार्वाकादि को नास्तिक दर्शन मान लिया जाता है। परन्तु जैन–दर्शन वेद–उपनिषदादि सुव्यवस्थित वाङ्मय से पृथक नहीं है। भारतीय दर्शनों में दुःखों से सर्वथा मुक्त हो जाने को अपवर्ग, परम पुरुषार्थ कैवल्य अथवा मोक्ष कहा गया है।

जैन दर्शन के अनुसार आत्मा का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है तथा जीव के समस्त कर्मों का क्षय हो जाना ही मोक्ष है।[iv] जब आत्मा संवर और निर्जरा के द्वारा पूर्णरूपेण कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाता है तब अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होता है।[v] कर्मरहित शुद्धावस्था को ही मोक्ष एवं निर्वाण कहा गया है। कर्म–सिद्धान्त के अनुसार शुभाशुभ कर्म बन्धक होते हैं।

अतः जिन पुण्यों को भोगते हुए नवीन पुण्यों का बन्ध हो उन्हें पुण्यानुबन्धी कर्म कहते हैं। इसके विपरीत यदि पाप–कर्मों को भोगते हुए नवीन पापों का उदय होता रहे तो वे पापानुबन्धी कर्म कहलाते हैं। बन्ध के कारण ही जीव का स्वरूप मलिन होता है। जैनागमों में इसे कर्म–वर्गणा कहा गया है। ये कर्म–वर्गणा के पुद्गल राग, द्वेष मोह–रूप स्निग्धता के कारण आत्म–प्रदेशों में ओत–प्रोत हो जाते हैं । यद्यपि आत्मा शुद्ध–बुद्ध एवं चरित्रमय है परन्तु कर्म के अधीन होकर जीव अनेक कष्टों को भोगता है। 'पाण्डवचरितम्'[vi] में कहा गया है कि जीवन पराधीन होकर अनेक कर्म–संहतियों वशात् कष्टों को भोगता

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

है यदि वह जीव स्वाधीन हो जाए तो बन्धनों से मुक्त हो जाएगा।[vi] अतः जैन–सिद्धान्तानुसार जीव और पुद्गलों का संयोग होना बन्धन है तथा जीव का पुद्गलों से विमुक्त होना मोक्ष है।[vii] एक बार क्षीण हो जाने पर बन्धन पुनः संभव न हो इस हेतु सर्वप्रथम आश्रवों (क्रोध कषायादि) का निरोध करके नवीन आगामी बन्धनों को रोकने के लिये संवर की साधना परमापेक्षित होती है। अवरुद्ध कर्मों के क्षय हेतु निर्जरा की आवश्यकता होती है। तत्पश्चात् तपोऽग्नि द्वारा कर्म–मल को जलाकर नष्ट कर दिया जाता है।

जैन दर्शन में मोक्षानुभूति के लिए सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, एवं सम्यक् चारित्र्य तीनों को आवश्यक माना गया है ।

अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति रत्नत्रय के सम्मिलित सहयोग से सम्भव है। 'उमास्वाति' के ये कथन इसके प्रमाण कहे जा सकते हैं–

''सम्यक्–दर्शन–ज्ञानचारित्र्याणि मोक्ष–मार्गः।।''[viii]

मोक्ष का अर्थ–आध्यात्मिक विकास की परिपूर्णता से है जो सहसा प्राप्त नहीं होती। आध्यात्मिक विकास–हेतु जीव क्रमिक विकास की जिन अवस्थाओं को प्राप्त करता है उन्हें गुणस्थान कहा जा सकता है।

गुणस्थान संख्या– 'जिनसेन' आचार्य ने अपनी कृति में चौदह गुणस्थान गिनाये हैं जिनमें से कुछ नाम निम्नलिखित हैं––

1. मिथ्यादृष्टि, 2. सासादन, 3. मिश्र, 4. असंयत सम्यक् दृष्टि, 5. संयतासंयत, 6. प्रमत्तसंयत, 7. अप्रमत्त संयत, 8. अपूर्वकरण, 9. उपशान्त कषाय, 10.क्षीणमोह, 11. सयोगकेवली, और 12. अयोगकेवली।[पग]

योगदर्शन में कहा गया है कि "जब योगी को धर्ममेध समाधि की प्राप्ति हो जाती है तब उसके लिये गुणों का कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। इस हेतु उनका जो निरन्तर परिवर्तित होते रहना परिणाम–क्रम है, वह उस योगी के लिये समाप्त हो जाता है। अतः वे भावी शरीर का निर्माण नहीं कर सकते।''[x] वस्तु में प्रति–क्षण अज्ञात परिवर्तन होता है। इस प्रकार क्रम का ज्ञान परिणाम के अन्त में होने से उसे 'परिणामापरान्त निर्ग्राह्य' कहा है और प्रत्येक क्षण से इसका सम्बन्ध है। एक क्षण के पश्चात् दूसरा ततः तृतीय इस प्रकार क्षणों के प्रवाह में पूर्वापर का व्यापार ही क्रम कहलाता है। अतः इसे क्षण–प्रतियोगी कहा गया हैं अर्थात् क्षणों का विभाजक क्रम।[xi] जिनका पुरुष के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा है ऐसे गुणों का अपने कारण में विलीन हो जाना कैवल्य है।[xii]

अयोगी केवली गुणस्थान में जब आयु कर्म के क्षय होने का समय आता है तब साधक योगों को निरोध करके इस गुणस्थान में प्रवेश करते हैं। योगरहित रहने से इसे अयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं। अयोगी केवली शैलेशीकरण को प्राप्त कर अन्तिम समय में वेदनीय आदि **भावोपग्राही** कर्मों को नष्ट कर देते हैं। तत्पश्चात् जीव ऋजु गति से एक समय में सीधे ऊपर की ओर सिद्धक्षेत्र अथवा मुक्तिस्थान में चले जाते हैं। वहीं लोकाग्र भाग में ठहर जाते हैं। इनकी संख्या पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच महाविदेह के भेद से 15 है।

'पाण्डवचरितम्' में पाण्डव–समता–सुधा–सागर में समान द्वारा प्रशान्त अन्तःकरण वाले शुक्ल ध्यान धारण कर क्षपणक श्रेणी को प्राप्त हुए तथा उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। कुछ समय पश्चात् अयोगी गुणस्थान में विश्राम लेकर शीघ्र ही त्रिलोकीकृत मुक्तावस्था को प्राप्त हो गये। इस प्रकार वे श्रुतधर्म का

उपदेश देकर मर्त्यासुर सभा के. क्षणभर योग का सेवन करके क्षणानन्तर, अयोगी गुणास्पद में विश्राम करके मुक्तिपद के अक्षय सुख को प्राप्त हो गये है।[xiii]

मुक्त प्रक्रिया– जैन धर्मानुसार कर्मों का आत्यन्तिक क्षय हो जाने पर मुक्तात्मा कर्मलिप्त नहीं होता अपितु शुद्ध–बुद्ध हो जाता है। जैसे बीज के जल जाने पर उसमें पुनः अंकुरित होने की शक्ति नहीं रहती तथैव कर्मदग्ध होने पर संसार रूपी अंकुर उत्पन्न नहीं होता।[xiv] अतः जैन धर्म के अनुसार मोक्ष शाश्वत् है। जिस प्रकार बादल हट जाने से जाज्वल्यमान सूर्य प्रकाशित हो जाता है तद्वत् कर्म–आवरण हट जाने से आत्मा अपने मूल ज्योतिर्मय चित्स्वरूप में पूर्ण प्रकाशित हो जाता है इसी का नाम मोक्ष है तथा इसी को आत्मलाभ भी कहा गया है।[xv]

जैनागमों के अनुसार मुक्त आत्माओं की अपुनरावृत्ति ही युक्तिसंगत सिद्ध होती है। वैशेषिक दर्शनानुयाइयों की भाँति जैन–दर्शन आत्मगुणों का सर्वथा उच्छेद नहीं मानता। वह बुद्धि, ज्ञान, गुण से कभी रहित नहीं होता। वह चेतनारहित जड़–पदार्थ नहीं है। अतः जैनों के अनुसार–मोक्ष में सभी आत्मगुण अपने सत्यस्वरूप में विद्यमान रहते हैं। गीतादि के अनुसार भी मुक्तजीव की अपुनरावृत्ति ही सिद्ध होती है।[xvi]

जीव का ऊर्ध्वगमन– जीव द्रव्य का स्वभाव पुद्गल द्रव्य की भाँति गतिशील है परन्तु पुद्गल स्वभावतः अधोगतिशील है और जीवन ऊर्ध्वगतिशील। मुक्तात्मा अपने स्वभावानुसार ऊर्ध्वगति करता है यथा कुम्भकार चक्र, दण्ड–चालित होने पर पूर्वतः प्राप्त वेगवशात् भ्रमण करता है तथैव कर्ममुक्त जीव भी पूर्वकृत कर्म से प्राप्त आवेश के कारण स्वभावानुसार ऊर्ध्वगति करता है।[xvii] यथा बन्धनों एवं लेपों से रहित होकर तुम्बा जल के ऊपर आ जाता है। उसी प्रकार कर्ममुक्त आत्मा भी कर्मलेपों से सर्वथा रहित होकर ऊर्ध्वगमन करके लोकाग्रभाग में विराजमान हो जाता है।[xviii]

मोक्ष के साधन– मोक्ष हेतु सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र्य समन्वित रूप में मोक्ष के साधन है। मोक्ष आत्मा से सम्बद्ध है एवं उसकी चरमोपलब्धि है–

सम्यक् दर्शन– 'तत्त्वार्थसूत्र' में कहा गया है कि तत्त्वभूत पदार्थों का श्रद्धान सम्यक् दर्शन है।[xix] जिनेन्द्र भगवान् ने जीव अजीवादि बहुविध सुतथ्य बताये हैं उनमें से जो हेय हैं उन्हें हेय रूप में और जो उपादेय हैं उनको उपादेय रूप यथातथ्य जानना सम्यक् दृष्टि है।[xx]

"उमास्वाति' के अनुसार– यथार्थ ज्ञान में श्रद्धा–होना सम्यक् दर्शन है। सम्यक् दर्शन में अन्धविश्वास अमान्य है। उनके अनुसार तीर्थकरों के उपदेश अनुभव प्राप्ति के पश्चात् ही इस श्रद्धा में लाये जाते हैं।[गगप]

पंचाध्यायी में कहा गया है कि यदि श्रद्धा, प्रतीति, रुचि आदि गुण स्वानुभूति सहित हों तभी वे सम्यक् दर्शन के गुण मान्य हैं।[xxii]

अतः यह सिद्ध हो जाता है कि सम्यक् दर्शन नितान्त अनिवार्य है। इसके बिना सम्यक्–ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य उसी प्रकार संभव नहीं है यथा बीज के बिना वृक्ष की उत्पत्ति, वृद्धि और फलागम संभव नहीं है।[गगपपप]

सम्यक् ज्ञान– ज्ञान आत्मा का गुण है, जानना उसका पर्याय है। सम्यक् दर्शन से युक्त ज्ञान को सम्यक् ज्ञान और मिथ्यादर्शन से युक्तज्ञान को मिथ्यादर्शन ज्ञान या मिथ्याज्ञान कहते हैं।

सम्यक्त्व के द्वारा सम्यक् दर्शन की साधना हो जाने पर मोक्ष–मार्ग पर बढ़ने के लिए दूसरी साधना ज्ञानोपासना है। सम्यक् दर्शन के द्वारा जिन जीवादि तत्त्वों में श्रद्धान उत्पन्न हुआ है उनकी विधिवत् यथार्थ जानकारी प्राप्त करना ज्ञान है। सम्यक् ज्ञान की परिभाषाएँ आगम में अनेक प्रकार से उपलब्ध होती हैं–

1. जिस प्रकार से जीवादि पदार्थ अवस्थित हैं, उस प्रकार से उनका जानना सम्यक्ज्ञान कहते हैं।[xxiv]
2. जो वस्तु के स्वरूप को न्यूनतारहित, अधिकता–रहित, विपरीतता–रहित जानता है, उसे सम्यक् ज्ञान कहते हैं।[xxv]
3. आत्मा और अनात्मा का संशय, विपर्यय और अध्यवसाय से रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।[xxvi]
4. आत्मस्वरूप का जानना ही सम्यग्ज्ञान है।[xxvii]

मतिज्ञान– पाँच इन्द्रियों तथा मन से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं।[xxviii] यह अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के भेद से चार प्रकार का होता है श्रुतज्ञान–मतिज्ञान के पश्चात् चिन्तन–मनन के द्वारा जो परिपक्व ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। साधक जब साधना पथ पर आगे बढ़ता है तो उसके मार्ग में अनेक उलझनें आती हैं। कर्त्तव्याकर्त्तव्य, हिताहित, सुमार्ग–कुमार्ग का निर्णय करने में सुशास्त्र मार्गदर्शक होता है।[xxix]

अवधि ज्ञान– आत्मा में एक ऐसी शक्ति मानी गई है, जिसके द्वारा इन्द्रियों के अगोचर अतिसूक्ष्म व इन्द्रियसन्निकर्ष के परे दूरस्थ पदार्थों का ज्ञान हो सकता है।[xxx]

मनः पर्याय ज्ञान– कर्म क्षीण होने पर जब भाव शुद्ध आत्मा मन द्वारा किसी प्रकार की विचारणा करता है तब चिन्तन प्रवर्तक मानस वर्गणा के विशिष्ट आचार्यों की रचना होती है।

केवल ज्ञान– अन्तिम ज्ञान केवल ज्ञान है। यह केवल ज्ञान, ज्ञानावरणीय चार घाती कर्मों के पूर्णतया नष्ट होने पर जो एक निर्मल परिपूर्ण और अनन्त ज्ञान उत्पन्न होता है उसे केवल ज्ञान कहते हैं।

सम्यक् चारित्र्य– तीर्थकरों द्वारा उपदिष्ट नैतिकता का पालन करना। जैनदर्शन सम्बन्धी नीति–व्यवस्था में पाँच बातों पर विशेष बल दिया गया है–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। मोक्ष के साधनीभूत सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र्य की त्रिवेणी धारा मुक्ति की ओर प्रवाहित होती है। जो चिदानन्द श्रद्धात्मक तत्त्व है वही सब प्रकार से आराधना करने योग्य है अन्यत् सब हेय है, ऐसी दृढ़ प्रकृति निर्मल प्रगाढ़ श्रद्धा को ही सम्यक्त्व कहते हैं। उसका आचार अर्थात् उक्त स्वरूप परिणमन रूपी आचरण ही दर्शनाचार है। दर्शनाचार की निर्मलता जिनेन्द्र भगवान् ने आठ प्रकार से मानी है।[गगगप] 1. निःशंकित, 2. निष्कांक्षित, 3. निर्विचिकित्सा, 4. अमूढ़ दृष्टि, 5. उपगूहन, 6. स्थितिकरण, 7. वात्सल्य, 8. प्रभावना ये सम्यक्त्व के आठ गुण हैं।

आचार पाँच प्रकार के हैं– ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्र्याचार, तपाचार और वीर्याचार।

चारित्र्य के दो रूप हैं– (1) प्रवृत्तिमूलक तथा (2) निवृत्तिमूलक। इन दोनों चारित्र्यों का प्राण अहिंसा और उसके रक्षक–सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह है। इस प्रकार जैन दर्शन के अनुसार मोक्ष का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है।

सन्दर्भ–

i संस्कृत–हिन्दी कोश–वामन शिवराम आप्टे।

ii भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास पृ० १।

iii मनुस्मृति– 2/11

iv कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः, तत्त्वार्थसूत्र 10/2–3।

v बन्ध हेतोरभावाद्धि निर्जरातश्च कर्मणाम् कात्स्न्र्येन विप्रयोगस्तु मोक्षो निर्गन्थरूपिणः। हरिवंशपुराण– 58/208

vi जीवोऽयं यां पराधीनः सहते दुःखसंहतिम्।
तामेतामात्मतन्त्रश्चेत् किं न मुच्येत् बन्धनात्।। पाण्डवचरितम् – 16/256

vii सांख्य एवं जैनदर्शन की तत्त्वमीमांसा तथा आचारदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन। डॉ० रामकिशोर शर्मा, पृ० 107।

viii तत्त्वार्थाधिगम–सूत्र 1/2–3।

ix हरिवंशपुराण, 58/80–83।

x ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम्। पातञ्जल योगदर्शन; कैवल्यपाद–32

xi क्षणप्रतियोगी परिणामापरानिर्ग्राह्य क्रमः। पातञ्जलयोगदर्शन, कैवल्यपाद–33

xii पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं। रूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति।। वही, 34

xiii धर्मविशुद्धमुपदिश्य ततः सदैव, मर्त्यासुरे सदसि योगजुषो मुहूर्तम्।
पाण्डोः सुताः क्षणमयोगि गुणास्पदे ते विश्रम्य मुक्तिपद्मक्षयसौख्यमीयुः।। पा०च०, 18/272।

xiv दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुरः।। तत्त्वार्थभाष्यकारिका–8

xv आत्मलाभ विदुर्मोक्षं जीवस्यान्तरमलक्षयात्।
नाभावो, वाप्यचैतन्यं न चैतन्यमनर्थकम्।। सिद्धिविनिश्चय–पृ० 384

xvi यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम। श्रीमदभगवद्गीता, 8/21

xvii पूर्वप्रयोगादसंगत्वात् वधच्छेदात् तथा गतिपरिणमाच्च तद्गतिः। तत्त्वार्थसूत्र–10/5/6

xviii जैनतत्त्वकलिका, पृ० 198

xix सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्र्याणि मोक्षमार्गः। तत्त्वार्थसूत्र– 1/1

xx सुतत्थं जिणभणियं जीवाजीवादि बहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणई, सोहु सुहिट्ठी । सूत्रप्राभृत गा० 5

[xxi] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र 1/2/3

[xxii] स्वानुभूति सनाथाश्चेत्, सन्ति श्रद्धादयो गुणाः।
बिना स्वानुभूतिं तु या श्रद्धा श्रुतमश्नतः।। पंचाध्यायी, 15/421

[xxiii] विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थिति वृद्धि फलोदयः।
न सन्त्यिसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरपि।। रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 32/1

[xxiv] स्वार्थसिद्धि–11

[xxv] अन्यूनमनतिरिक्तं यथातथ्यं बिना च विपरीतात्।
निःसंदेह वेद यंदाहुस्तज्ञानमागंमिनः।। रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 42

[xxvi] संशय विमोह विव्भभविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्भं पाणं सायारमणेयमेयं तु।। द्रव्यसंग्रह, गाथा–42।

[xxvii] आपरूप का जानपनैः सो सम्याग्ज्ञान कला है। छहडाला–3/2

[xxviii] इन्द्रियानिन्द्रियोत्थंस्यान्मतिज्ञानमनेकथा।
परोक्षमर्थं सान्निध्ये प्रत्यक्षं व्यावहारिकम्।। हरिवंशपुराण, 10/145

[xxix] तस्माछास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। श्रीमद्भगवद्गीता, 16/24।

[xxx] हीरालाल जैन– भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० 245–246

[xxxi] तत्त्वार्थसूत्र–1/1